Quest Journals
Journal of Research in Humanities and Social Science
Volume 9 ~ Issue 10 (2021)pp: 32-35
ISSN(Online):2321-9467
www.questjournals.org

Research Paper

जातिभेद और वर्णभेद : गाँधी एवं अम्बेडकर की दृष्टि में

उमाशंकर पासवान
सहायक प्राध्यापक दर्शनशास्त्र विभाग, नारायण महाविद्यालय, गोरियाकोठी, सिवान, जे० पी० विश्वविद्यालय छपरा, बिहार

जातिभेद या जाति पर आधारित भेदभाव का संबंध जाति–व्यवस्था से है। जाति व्यवस्था एक उल्लेखनीय भारतीय सामाजिक संस्था है, जिसका विशेष सम्बन्ध हिन्दू धर्म और समाज से है। लेकिन भारत के अधिकांश मुसलमान और ईसाई पहले हिन्दू थे इसलिए भारत के मुसलमानों और ईसाईयों के बीच भी जाति का प्रवेश हो गया है। सिक्ख समाज भी इससे अछूता नहीं रह पाया है।[1]

A New Dictionary of sociology के अनुसार एक शुद्ध जाति–व्यवस्था की जड़ें धार्मिक व्यवस्था में होती है। जाति वंशानुगत अन्तर्विवाही और व्यावसायिक समूहों की ऐसी श्रेणी है, जिसमें विभिन्न जातियों की सामाजिक स्थिति पूर्व निश्चित रहती है और विभिन्न जातियों के बीच धार्मिक आधार पर परस्पर दूरी बनी रहती है। जाति व्यवस्था के अन्तर्गत निम्न बातें मुख्य रूप से आते है– (क) अन्तर्विवाह (ख) व्यक्तिगत और सामाजिक सम्पर्क से सम्बन्धित कड़े नियम (ग) व्यावसायिक एकरूपता (घ) हर जाति में एक जैसी आर्थिक क्रियाएँ और कर्मकाण्ड।[2]

जाति के मुद्दे पर 20वीं सदी में वर्तमान भारत के दो महान निर्माताओं के बीच अत्यंत ही तीक्ष्ण शीतयुद्ध हुई, जिसके कारण भारतीय समाज की कई रूढ़ीगत परंपराएँ टूट गई। समाज एक नव निर्माण के ओर गतिशील हुआ, हलांकि अभी तक उन महान स्वप्न द्रष्टाओं के इच्छा के अनुरूप भारतीय समाज नहीं ढल पाया है लेकिन इतना अवश्य है कि व्यापक परिवर्तन हुए है। गाँधी और अम्बेडकर परतंत्र भारत के वैसे सामाजिक पृष्ठभूमि में उत्पन्न हुए जहाँ हिन्दू धर्म में सैकड़ों कुरीतियाँ अपनी जड़े जमाए हुए थी। दोनों महान समाजिक योद्धाओं ने इन सामाजिक कुरीतियों के विरूद्ध अंतिम सांसे तक लड़ाई लड़ी। वे कितने सफल हो सके यह तो हमें आए दिन समाचार पत्रों के माध्यम से प्रतिदिन सबूत मिल रहे हैं। जहाँ हमें धार्मिक समारोह में अन्तर्धार्मिक लोग भी भोज में दिखते हैं वहीं अन्तर्जातीय विवाह से लेकर अन्तरधार्मिक विवाह की चलन आम होते जा रही है। तात्पर्य है कि गाँधी और अम्बेडकर दोनों तत्कालीन सामाजिक परिस्थितयों व परिवेश से असंतुष्ट थे। दोनों समाज का नव निर्माण करना चाहते थे। इस क्रम में दानों ने समाज में प्रचलित सामाजिक कुरीतियों, जाति–भेद, छुआछूत आदि को दूर करने का प्रयास किया। गाँधी सामाजिक समरसता की स्थापना एवं सर्वोदय की अवधारणा को साकारित करने के लिए परम्परागत हिन्दू सामाजिक रचना में रचनात्मक सुधार चाहते हैं। वहीं अम्बेडकर इसमें मूलभूत ढांचागत परिवर्तन की मांग करते हैं और ऐसा न होने पर शूद्रों के लिए हिन्दू धर्म से अलग होने की सिफारिश भी करते हैं।

गाँधी और अम्बेडकर दोनों जाति आधारित भेदभाव को समाप्त करना चाहते है। दानों शूद्रों की समस्या का समाधान चाहते हैं परंतु इस समस्या के कारण, स्वरूप व निदान के प्रति दोनों का दृष्टिकोण एवं कार्य पद्धिति में मौलिक भिन्नता है। परिणामस्वरूप दोनों में समस्या–समाधान के प्रति एक वैचारिक दूरी सदैव बनी रही। इनके द्वारा सामाजिक समस्याओं के समाधान हेतु प्रस्तुत विचार में आधारभूत भिन्नता है। इस क्रम में इन दोनों महापुरूषों द्वारा वर्ण व्यवस्था सम्बंधी चिन्तन प्रसिद्ध एवं विचारणीय है।

गाँधी का वर्णव्यवस्था संबंधी विचार

गाँधी वर्णव्यवस्था को हिन्दू धर्म का अनिवार्य अंग मानते हैं। वे इसे धर्म का अविष्कार तथा 'सत्य की निरंतर गवेषणा का परिणाम' मानते है। गाँधी के अनुसार वर्ण व्यवस्था का आशय व्यवसायमूलक विभाजन पर आधारित सामाजिक संगठन से है। यह हमें सिखाती है कि हममें से प्रत्येक को अपनी खानदानी पेशे द्वारा रोजी कमानी चाहिए।[3]

इसे और स्पष्ट करते हुए लाल लिखते है कि– ''वर्ण व्यवस्था कर्त्तव्य तथा दायित्व के अनुरूप व्यवस्था है यह किसी को भी कोई विशेष अधिकार या कोई विशेष सुविधा देने की व्यवस्था नहीं है। अपने वंशानुक्रम के अनुरूप पेशे में लगा व्यक्ति के लिए निर्धारित कर्तव्य न जन्म–सिद्ध अधिकार है और न कोई अनिवार्य मजबूरी। इसका मात्र अर्थ यही है कि समाज के निर्धारित कर्मों में एक कर्म को सीखने का अवसर उसे स्वतः उपलब्ध है– यह सामाजिक सुविधा है। इसकी एक उपयोगिता यह अवश्य है कि हर पुनः पुनः कार्यों के बंटवारे का झंझट नहीं रहता। सामान्यतः यह सुविधा है कि जो व्यक्ति एक कार्य सीख चुका है वह शायद उसे आसानी से करता रहे। वर्ण उसे उसके लिये बाध्य नहीं करता, यदि उसकी रूचि अपने वर्ण के निर्धारित कर्म में नहीं है, तो वह उस वर्ण का नहीं रह जाता। गाँधी स्पष्ट कहते हैं कि यदि किसी ब्राह्मण कुल के व्यक्ति में ब्राह्मणोचित प्रवृत्तियां नहीं है, तो वह जन्म से ब्राह्मण होने पर भी, ब्राह्मण नहीं रह जाता''।[4]

गाँधी के सामाजिक विचारों का आधार समानता है। इनके अनुसार सभी व्यक्ति समान है। अतः जाति, धर्म, व्यवसाय इत्यादि के आधार पर समाज में जो असमानता, ऊँच–नीच, उत्कृष्ट–निकृष्ट आदि का भाव निर्मित किया गया है वह कृत्रिम है। वह मनुष्य की अपनी इच्छापूर्ति या स्वार्थपूर्ति का साधन है। आदर्श समाज की स्थापना तभी हो सकती है, जब ऊँच–नीच, का यह भाव समाप्त हो। गाँधी कहते हैं– मैं वर्णश्रम को जन्म पर आधारित श्रम का स्वस्थ विभाजन मानता हूँ। जाति का वर्तमान स्वरूप इसका मौलिक रूप की विकृति है। मेरे साथ श्रेष्ठता और हीनता का सवाल नहीं है। यह पूरी तौर से कर्त्तव्य का सवाल है।[5]

सामाजिक संदर्भ में गाँधी जन्म आधारित वर्ण–व्यवस्था के समर्थक है परंतु वे जाति–व्यवस्था, अस्पृश्यता, छुआछूत आदि के विरोधी है। गाँधी वर्ण व्यवस्था को केवल व्यक्ति के आर्थिक जीवन व आजीविका प्राप्ति से सम्बन्धित करते हैं जिसमें ऊँच–नीच, का स्थान नहीं है। गाँधी की इस वर्ण–व्यवस्था में तीन बातें सम्मिलित है–

1. सभी कार्यों या व्यवसायों में समानता होनी चाहिए। इसमें श्रेष्ठता–निम्नता का भाव नहीं होना चाहिए। इस संदर्भ में धर्मों द्वारा बताए गए श्रेणीगत पदानुक्रम को स्वीकार नहीं किया जा सकता।
2. वंशानुगत कार्य परम्परा व्यवसाय को व्यक्ति द्वारा अपनी आजीविका का साधन व समाज के प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन समझ कर करना चाहिए। दूसरे शब्दों में व्यक्ति को स्वधर्म का पालन निष्ठा के साथ करना चाहिए।
3. समाज में इस विचार का पालन करने के लिए विभिन्न कार्यों व व्यवसायों से प्राप्त होने वाले लाभों में अधिकाधिक समानता होनी चाहिए ताकि उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा में कमी न आए। स्पष्टतः वर्ण–व्यवस्था की अवधारणा में कीमत एवं प्रतिष्ठा के संबंध में समरूपता पर जोर दिया जाता है।

गाँधी के अनुसार वर्ण–व्यवस्था में सामाजिक कर्त्तव्यों के वर्गीकरण एवं श्रम विभाजन की बात निहित है। इसमें व्यवस्थित एवं वैज्ञानिक समाज रचना का आधार निहित है। गाँधी वर्ण–व्यवस्था का समर्थन क्यों करते हैं इसे निम्न तीन कारणों में देखा जा सकता है–

1. जन्म आधारित वर्ण–व्यवस्था से वंशानुगत व्यवसाय को परिष्कृत करने में आसानी होगी। पिता द्वारा प्राप्त अनुभव व योग्यता को प्राप्त कर पुत्र जीवन में सरलता से अग्रसरित हो सकता है व अपनी आजीविका की पूर्ति कर सकता है। सरलता से आजीविका की पूर्ति होने पर व्यक्ति अपने शेष समय का सदुपयोग अपनी आध्यात्मिक उन्नति में कर सकता है।
2. मनुष्य द्वारा अपना पैतृक कार्य त्यागने पर अव्यवस्था उत्पन्न हो जाएगी। इससे समाज में किसी कार्य विशेष के लिए प्रतियोगिता व संघर्ष उत्पन्न हो सकता है। परिणामस्वरूप घृणा व विद्वेष की भावना बढेगी, बेरोजगारी का विस्तार होगा। इस प्रकार वर्ण–व्यवस्था से आर्थिक जीवन में कटुता व प्रतियोगिता की समाप्ति होगी व्यक्तिगत लाभ अर्जन करने का भाव समाप्त होगा।
3. वर्ण–व्यवस्था से सामाजिक संतुलन की स्थापना में मदद मिलती है। यह हिन्दू धर्म की अंगिक एकता को इंगित करता है।

गाँधी इस आंगिक एकता को दैवीय व प्राकृतिक मानते हैं। यह वंशानुगत कर्म–नियम शाश्वत नियम है। इसमें ढाँचागत परिवर्तन सम्भव नहीं है। यहाँ गाँधी वर्ण–व्यवस्था को मानने के साथ–साथ यह भी मानते हैं कि सामाजिक महत्व एवं कीमत के दृष्टिकोण से सभी कार्य समान है। अतः किसी कार्य को बड़ा या छोटा नहीं समझना चाहिए। इसे स्पष्ट करते हुए लाल लिखते हैं–गाँधी वर्तमान हिन्दू समाज में प्रचलित जाति–भेद से क्षुब्ध हैं, उनके अनुसार तो यह वर्ण–व्यवस्था का सर्वथा विकृत तथा दूषित रूप है क्योंकि इस वर्ण के पीछे जो मूल विचार है, वही नष्ट हो गया है। वर्ण जन्म के आधार पर जाति को नहीं स्वीकारता, वह यह नहीं मानता कि कोई एक वर्ण में जन्म ले कर श्रेष्ठ हो जाता है, तथा कोई दूसरे वर्ण में जन्म लेने से ही छोटा हो जाता है। गाँधी स्पष्ट कहते हैं कि प्रारम्भिक वर्ण–विचार में छोटे–बड़े का आधार ही नहीं था, बल्कि वहाँ तो आधार था व्यक्ति की अपनी कार्य क्षमता तथा समाज में कार्य–विभाजन की अनिवार्यता। इसके अनुसार ब्राह्मण– ब्राह्मण इसलिए नहीं था कि वह ब्राह्मण मां–बाप के घर पैदा हुआ, बल्कि इसलिए ब्राह्मण था कि वह समाज में अपना योगदान वैसे ही कर्मों के द्वारा कर रहा था, जिसे ब्राह्मण के कर्म के अन्तर्गत रखा गया था। उसी प्रकार क्षत्रिय वैश्य तथा शूद्र भी अपने–अपने कार्यों के अनुरूप जाने जाते थे। यह भी प्रारम्भ में स्पष्ट सम्भावना थी कि कोई शूद्र यदि सही ढंग से ब्राह्मणोचित कार्य करने लगे, तो उसे ब्राह्मण वर्ण में ही समझा जाता। गाँधी यह भी कहते है कि उपर से देखने पर कुछ कार्य–जैसे ब्राह्मण के कार्य शूद्रों के सेवा–कार्य से श्रेष्ठतर प्रतीत होता हैं, किन्तु उसका यह अर्थ नहीं कि ब्राह्मण उच्च हो गया और शूद्र नीचा। गाँधी कहते हैं कि समाज में सेवा–कार्य, सफाई–कार्य उतना ही आवश्यक है जितना अध्ययन। यह तो बाद में लोगों ने एक को उच्च तथा एक को छोटा बना दिया। प्रारम्भ में स्पष्ट समझ थी कि कोई अपने कार्य के कारण ऊँचा–नीचा नहीं होता, क्योंकि समाज के लिए सभी कार्य एक जैसे हैं, समान रूप में उपयोगी है।[6]

गाँधी के अनुसार वर्ण–व्यवस्था में विकृति का कारण कुछ पेशों तथा व्यवसायों को निम्न मानकर तथा कुछ को उच्च मानकर जातिगत विशेषताओं को उसमें स्थापित करना है। स्पष्टतः जाति से वर्ण–व्यवस्था में ऊँच–नीच का भाव आता है तो फिर जाति–भेद वर्ण–व्यवस्था में विकृति का परिणाम है। गाँधी के अनुसार वर्ण का सिद्धांत जाति का सिद्धांत नहीं है क्योंकि–

1. वर्ण–व्यवस्था नैतिक है जबकी जाति का सिद्धांत अनैतिक है।
2. वर्ण–व्यवस्था का सिद्धांत श्रम–विभाजन पर आधारित है। यह सामाजिक कर्त्तव्यों के विभाजन व वर्गीकरण का सिद्धांत है जबकी जाति–व्यवस्था कृत्रिम है। यह समाज में विषमता व घृणा को बढ़ावा देती हैं आदर्श समाज के निर्माण के लिए इसका विनाश आवश्यक है।
3. वर्ण चार है, जातियां अनेक है। जातियों में ऊँच–नीच, उत्कृष्टता–निकृष्टता का भाव विद्यमान है। इसमें अस्पृश्यता को बढ़ावा मिलता है। सर्वोदयी समाज की रचना करने के लिए इसका उन्मूलन आवश्यक है।[7]
4. वर्तमान जाति व्यवस्था वर्णाश्रम की प्रतिस्थापना है, इसे जल्दी से जल्दी समाप्त कर दिया जाना चाहिए।[8]

जातिभेद बनाम जातिवाद

जातिभेद का घनिष्ठ संबंध जातिवाद से है। जातिवाद जाति प्रथा से संबंधित है। यह एक सामाजिक समस्या है। यह जातिवाद ही एक अर्थ में विभिन्न जातियों में स्तरीकरण एवं श्रेणीकरण को बढ़ाकर जाति–विभेद की नींव रखता है, जिसकी अभिव्यक्ति एक दूसरे के प्रति घृणा, द्वेष या प्रतिस्पर्धा के रूप में होती है। अपनी ही जाति के हित को सर्वोपरि समझना जातिवाद का सबसे सामान्य रूप है। वस्तुतः जातिवाद एक ही जाति के सदस्यों की वह भावना है जो अपनी जाति के हित के सम्मुख अन्य जाति के समान हित का अवहेलना व प्रायः हनन करने को प्रेरित करती है। जातिवाद में समाज या व्यक्ति की बजाय केवल अपनी जाति के हित को ध्यान में रखा जाता है। इस रूप में जातिवाद मानव भावनाओं का संकुचित रूप है। यह ''वसुधैव कुटुंबकम्'' और 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' की अवधारणा पर चोट करता है। सर्वोदयी समाज के निर्माण में यह घातक है। 1926 ई0 में गाँधी जी यंग इण्डिया में इसी समस्या का उल्लेख करते हुए लिखते हैं– वर्तमान अनगनित विभाजन, उनके पड़ोसियों की धार्मिक भावना और सामाजिक खुशहाली के लिए नुकसानदेह है।[9]

निदान के उपाय

परम्परागत हिन्दू समाज की संरचना में सुधार किया जाए, उसमें आयी विकृति को दूर किया जाए । इसके लिए गाँधी निम्नलिखित उपाय करते हुए नजर आते है–

1. सवर्णो का हृदय परिवर्तन
2. हरिजन को मंदिर एवं अन्य धार्मिक स्थल में प्रवेश
3. 'हरिजन' नाम देना–मनोवैज्ञानिक समर्थन
4. 'हरिजन सेवक संघ' की स्थापना
5. कथन– ''अगर मेरा पुनर्जन्म हो तो शूद्र के रूप में ताकि मैं उसका पूर्ण सुधार कर सकूँ। अगर नहीं हुआ तो हिन्दू धर्म नष्ट हो जाएगा।''
6. गाँधी शूद्रों के रहन–सहन के ढंग में भी सकारात्मक परिवर्तन चाहते हैं उनके अनुसार मांस भक्षण, मदिरापान इत्यादि निकृष्ट कोटि के कार्यों से दूर रहे।
7. अन्तर्जातीय विवाह का प्रोत्साहन, जिसमें वर या बधु में से कोई एक पक्ष हरिजन हो ।[10]

निदान क्यों जरूरी

1. अस्पृश्यों के अलग होने पर सवर्णों और उनके बीच अन्तर्जातीय संघर्ष की दूसरी या नयी सामाजिक समस्या उत्पन्न हो जाएगी।
2. सामाजिक संतुलन व सामाजिक स्वास्थ्य की रक्षा हेतु।
3. हिन्दू समाज की एकता को बनाए रखने के लिए।
4. हिन्दू समाज को विनष्ट होने से बचाने के लिए ।

अम्बेडकर का वर्ण व्यवस्था संबंधी विचार

गाँधी के विचारों के ठीक विपरीत अम्बेडकर वर्ण–व्यवस्था के घोर आलोचक थे। वे हिन्दू धर्म के वर्ण भेद, जाति भेद छुआछूत आदि के पूरी तौर पर विरूद्ध थे। उनके द्वारा जीवन के अंतिम काल में हिन्दू धर्म का त्याग कर बौद्ध धर्म को अपनानने के मुख्य कारणों में वर्ण–व्यवस्था एक है।[11] अम्बेडकर अपने व्यक्तिगत पृष्ठभूमि व अपने अनुभव के आधार पर यर्थाथवादी दृष्टिकोण रखते हुए जाति–भेद के कारण, स्वरूप व निदान पर अपना मत प्रस्तुत किया। अम्बेडकर जाति–भेद के निदान हेतु परम्परागत हिन्दू समाज संरचना में ढ़ांचागत परिवर्तन की बात करते है इस क्रम में वे वर्ण व्यवस्था का विरोध करते है क्योंकि–

1. इनके अनुसार दलित की अमानवीय स्थिति का मूल कारण वर्ण व्यवस्था है।
2. इसमें व्यक्ति की क्रियात्मक क्षमता की उपेक्षा का भाव सम्मिलित है।
3. इसमें गुण की बजाए केवल जन्म के आधार पर किसी को पूजनीय व किसी को घृणित करार दिया जाता है।
4. वर्ण व्यवस्था में यह माना जाता है कि सब की नियति पूर्व निर्धारित है। इसका आशय यह है कि दलित का दलित बने रहना ही ईश्वरीय इच्छा है। इस रूप में यह व्यवस्था व्यक्ति की स्थिति में परिवर्तन का विरोधी है।
5. वर्ण व्यवस्था अपमानजनक सामाजिक व्यवस्था है। यह मनुष्य की सृजनशील प्रवृत्तियों पर कुठाराघात कर उनमें परावलंबन की भावना को बढ़ाता है।
6. अम्बेडकर के अनुसार वर्ण–व्यवस्था कोई दैवीय या प्राकृतिक नियम नहीं है। यह अटल नियम नहीं है। यह एक कृत्रिम व्यवस्था है जो कि कुछ वर्गों द्वारा अपनी स्वार्थों की सिद्धि हेतु निर्मित की गई है। गाँधी जहाँ यह मानते थे कि जाति भेद वर्ण–व्यवस्था के विकृति का परिणाम है, वर्ण–व्यवस्था को बनाए रखकर भी इसकी विकृति को दूर किया जा सकता है। वही अम्बेडकर का मानना है कि वर्ण व्यवस्था की स्वभाविक एवं अनिवार्य परिणाम जाति–भेद है, अतः जाति को दूर करने के लिए वर्ण–व्यवस्था का उन्मूलन आवश्यक है।

अम्बेडकर एक धर्म में एक जाति एवं एक वर्ण की बात करते हैं, वे समरसता, एकरसता, एकभाव, एक प्रकार के मनुष्य की बात करते हैं। गाँधी चाहते हैं सामाजिक संतुलन बनाए रखने के लिए चार वर्ण बना रहे परंतु उपजातियाँ मिट जाए। उपजातियों के मिट जाने से जातिभेद भी समाप्त हो जाएंगे। अम्बेडकर के अनुसार इस बात की कोई गारन्टी नहीं है कि उप–जातियों के समाप्त होने के परिणामस्वरूप जातियाँ निश्चित रूप से समाप्त हो जाएगी। बल्कि उप–जातियों के समाप्त होने से जातियों की जड़े और मजबूत हो जाएगी।[12]

अम्बेडकर वर्ण को नए रूप में व्याख्या करते है। इनके अनुसार आरंभ में वर्ण व्यवस्था तीन वर्णों में बँटी थी – ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य। इंडो–आर्यन समाज में शूद्रों को क्षत्रिय वंश का अंश माना जाता था। उनका कोई पृथक वर्ण नहीं था। ये क्षत्रिय वर्ण के ही भाग माने जाते थे, परंतु कालांतर में जब ब्राह्मणों एवं शूद्र राजा के बीच संघर्ष प्रारंभ हुआ तो फिर ब्राह्मणों ने शूद्रों का उपनयन संस्कार करना बंद कर दिया। इस प्रकार उन्हें क्षत्रिय वर्ग से पृथक कर दिया गया। इन तीनों वर्णों से पृथक शूद्रों के लिए एक चौथा वर्ण बनाया गया तथा सेवा संबंधी कार्यों को उनसे सम्बन्धित कर दिया गया। सामाजिक आर्थिक संदर्भों में उनके उपर अनेक बंदिशें लगा दी गई परिणामस्वरूप उनकी स्थिति में लगातार नकारात्मक परिवर्तन होता गया। ऋग्वेद में तीन ही वर्ण हैं, शूद्र को चौथे वर्ण के रूप में वहाँ गिना नहीं गया है। शतपथ–ब्राह्मण और तैत्तिरीय–ब्राह्मण भी तीन ही वर्णों की स्थिति बतलाते हैं। ऐसी अवस्था में यह मानने का क्या आधार हो सकता है कि इन तीन वर्णों के अतिरिक्त, आर्यों के समाज में बहुत–से ऐसे भी लोग थे, जिन्हें आर्यों ने कोई नाम नहीं दिया था ? इससे अधिक युक्ति–युक्त सम्भावना यही हो सकती है कि शूद्र भी किसी–न–किसी प्रकार के द्विज थे और उनका स्थान, घट–बढकर, क्षत्रियों के ही समान था।[13]

हिन्दू–धर्म में सुधार की सलाह

अम्बेडकर हिन्दू धर्म को उसके अमानवीय मूल्यों एवं जातिगत भेदों से छुटकारा दिलाने के लिए कुछ सुझाव देते हैं :–

1. हिन्दुओं के नैतिक आचरण के निर्धारण हेतु केवल प्रमाणिक धार्मिक ग्रंथ होना चाहिए जो सभी हिन्दुओं द्वारा मान्य व स्वीकार हो। इस एक ग्रंथ के अलावा बाकी अन्य ग्रंथों को कोई सामाजिक या कानूनी मान्यता नहीं दी जाए। अन्य धर्म ग्रन्थों के सिद्धांतो, नियमों आदि का प्रचार करना दंडनीय अपराध घोषित किया जाए।
2. पंडे, पुजारियों के पद समाप्त किए जाए। यदि रहे भी तो फिर इसका आधार वंशानुगत जा जन्मजात ना होकर राज्य द्वारा ली जाने वाली परीक्षा में उत्तीर्णता हो। प्रत्येक हिन्दू के लिए पुरोहितों के द्वार खोल दिया जाए ।
3. किसी भी पंडे या पुजारी को धार्मिक कार्य के निर्वहन के लिए न्यूनतम शिक्षा का होना आवश्यक होना चाहिए। बिना डिग्री या उपाधि के इस कार्य को करने पर दंड का प्रावधान होना चाहिए।
4. राज्य की आवश्यकताओं को देखते हुए आई0 सी0 एस0 अधिकारियों की भांति पुरोहित की संख्या भी निर्धारित व निश्चित होनी चाहिए।
5. पुरोहित को राज्य का नौकर होना चाहिए राज्य द्वारा उसे तनख्वाह देनी चाहिए।
6. अन्तरजातीय खान–पान एवं अन्तरजातीय विवाह को सामान्य रूप से स्वीकृति प्रदान करना।

इस संदर्भ में अम्बेडकर के विचारों का उल्लेख करते हुए डॉ0 रमेन्द्र लिखते हैं– ''वैसे लोगों की आलोचना करना या उनकी हँसी उड़ाना बेकार है जो अन्तर्जातीय खान–पान या विवाह नहीं करते या कभी–कभी अन्तरजातीय खान–पान और विवाह कर लेते हैं; इससे कोई लाभ नहीं हो सकता। इसका वास्तविक निदान शास्त्रों में लोगों के विश्वास को खत्म करना है। इसमें आपको कैसे सफलता मिलेगी, जब तक शास्त्रों को मनुष्य के विचार एवं विश्वास को प्रभावित करने देते रहेंगे ? शास्त्रों के अधिकार को चुनौती नहीं देना, लोगों को शास्त्रों में विश्वास करने देना, फिर लोगों पर अमानवीय तर्क–विहीन व्यवहार करने के लिए आलोचना करना सामाजिक सुधार का कोई उचित तरीका नहीं है। समाज सुधारक, जिसमें महात्मा गाँधी भी शामिल है, अस्पृश्यता हटाना चाहते हैं, पर लगता है कि उन्होंने महसूस नहीं किया है कि लोगों का कार्य शास्त्रों पर विश्वास का प्रतिफल मात्र है और ये कभी भी अपने व्यवहार में परिवर्तन नहीं लाएंगे जब तक शास्त्रों में उनका विश्वास खत्म नहीं होता है, क्योकि उनका विश्वास शास्त्र पर आधारित है''।[14]

संदर्भ सूची

1- रमेन्द्र, समाज एवं राजनीति दर्शन और धर्मदर्शन, मोतीलाल बनारसीदास, पटना, 2011, पृ. सं0. –201
2- रमेन्द्र द्वारा उद्धृत, Ibid, पृ. सं0. –201
3- N.K. Bose, Selection from Gandhi, Navajivan. Publishing House, 1972, P.N- 263
4- बी. के. लाल, समकालीन भारतीय दर्षन मोतीलाल बनारसी दास, 1991 पृ. सं0. –177
5- N.K. Bose, Selection from Gandhi, Navajivan. Publishing House, 1972, P.N- 263
6- बी. के. लाल, समकालीन भारतीय दर्शन मोतीलाल बनारसी दास, 1991 पृ. सं0. –177
7- N.K. Bose, Selection from Gandhi, Navajivan. Publishing House, 1972, P.N- 265

*Corresponding Author: उमाशंकर पासवान

8- Ibid – 265
9- Ibid – 265
10- Ibid – 265
11- रमेन्द्र, डा0 अम्बेडकर ने हिन्दू धर्म का त्याग क्यों किया, बुद्धिवादी समाज, पटना, 1997, पृ. सं.–16
12- बाबा सहेब डा0 अम्बेडकर सम्पूर्ण वाड्मय खण्ड–1 डा0 अम्बेडकर प्रतिष्ठान, नई दिल्ली, 1998, पृ. सं.–90
13- रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद,1962 पृ. सं.–57
14- डा0 रमेन्द्र द्वारा उद्धृत, समाज और राजनीति तथा धर्म दर्शन, मोतिलाल बनारसी दास, पटना, 2011, पृ. सं.–208